इलाज के पारंपरिक तरीके

एन. बी. सरोजिनी

कुछ सदियों पहले तक डाक्टर, अंग्रेजी दवाइयां, सुईयां या आले नहीं थे। इसका मतलब यह नहीं कि इलाज करने वाले नहीं थे। इलाज हम सबके हाथ में था। घरेलू मसालों, जुड़ी-बूटियों और काढ़ों से इलाज होता था। घर के बूढ़े-बूढ़ियों से यह ज्ञान बच्चों को मिलता था। फिर उनके बच्चों को। इस तरह परंपरा चलती रहती थी।

कुछ ख़ास तकलीफ़ों या बड़ी बीमारियों के लिए सयाने लोग होते थे। जैसे मोच उतारने वाला या हड्डी बैठाने वाला। सांप का ज़हर उतारने वाला या जचगी कराने वाली दाई। कुछ वैद्य और हकीम होते थे। ये सभी लोग भी अपने ही होते थे। यानि कोई काका या चाचा या अम्मा और ताई। इनसे न कोई डर था, न इन्हें कोई घमंड। सेहत हर किसी का मसला थी। इलाज के कई तरीके जैसे आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध, प्राकृतिक चिकित्सा सब साथ-साथ फलते फूलते थे।

आधुनिक इलाज

फिर आया इलाज और जांच का आधुनिक तरीका। जिसे एलोपैथी कहा जाता है। इसमें दवा का असर चटपट दिखाई पड़ता है। हालांकि कई बार कुछ और तकलीफ़ें पैदा हो जाती थीं। लोग इसकी तरफ़ दौड़ पड़े। जल्दी ही इसने सारी दुनिया पर अपना कब्ज़ा कर लिया। इसके जादू में बंध कर लोग इलाज के पुराने तरीकों को मूर्खता कहने लगे। जड़ी-बूटियों को कचरा-कूड़ा समझने लगे। अब सारा ज्ञान सफेद कोट पहनने वाले डाक्टर साहब के दिमाग में कैद हो गया। पैसा दो और इलाज पाओ।

इलाज का यह तरीका गोरे विदेशी शासक लाए थे। उन्होंने भी यहां के पारंपरिक तरीकों को खत्म करने में कोई कसर न छोड़ी। उनकी नज़र में काले भारतीय मूर्ख थे। तो उनका ज्ञान महत्वपूर्ण कैसे होता? नतीजा यह हुआ कि धीरे-धीरे पारंपरिक तरीके मरने लगे। घर के बड़े-बूढ़े अपना ज्ञान भूलने लगे। इन तरीकों पर से हमारा विश्वास उठने लगा।

पारंपरिक इलाज

पुराने तरीकों में इलाज सिर्फ़ दवाइयों से नहीं होता था। उसके पीछे आपसी विश्वास और संबंध भी होता था। उस इलाके के मौसमों की समझ होती थी। सर्दी-गर्मी की तासीर की जानकारी होती थी। बीमार और इलाज करने वाला मिल कर काम करते थे। यह रिश्ता सिर्फ़ दो आदमियों के बीच में नहीं था। बल्कि आदमी और प्रकृति के बीच होता था। देखा गया है कि अलग-अलग इलाकों में मौसम के हिसाब से खाने की चीज़े बदलती हैं। वहां की आम बीमारियों के हिसाब से कुछ खास जड़ी-बूटियां उगती हैं। अलग-अलग समय में उनकी चटनी बना कर या भून कर खाने का रिवाज़ है। यानि खान-पान के ढंग रीति-रिवाज सब सेहत से जुड़े होते थे। सेहत का मतलब था जीने का एक ढंग।

औरतों की बीमारियां

नए और पुराने दोनों तरीकों में एक खोट रहा। वह यह कि औरतों की बीमारियों की तरफ़ कम ध्यान दिया गया। सिवाय गर्भ और जचगी के उसकी तकलीफ़ों को वहम कह दिया। कुंआरी लड़की की बीमारियों में कहा जाता था—"शादी कर दो ठीक हो जाएगी।" शादीशुदा औरत के लिए कहते थे—"गोद भरेगी तो सब ठीक हो जाएगा।"

इसके पीछे समाज का पितृसत्तात्मक नज़रिया था। जिसमें औरत को इंसान के रूप में नहीं बल्कि पत्नी और मां के रूप में देखा जाता है। औरत की बीमारियों को छुपाने का भी चलन था। उसकी बात करना शर्म की बात समझी जाती थी।

फिर भी चूंकि इलाज करने वाली घर की बड़ी-बूढ़िया होती थीं, वे औरत के दुख-दर्द समझती थीं। अनुभवी दाई तन और मन दोनों की पीर समझती थी। वह चुपचाप जड़ी-बूटियों से इलाज कर पाती थी। औरत भी खुल कर अपने मन की बात कह देती थी।

कुछ उदाहरण

आज भी बांदा ज़िले की आदिवासी औरतें माहवारी के दर्द के लिए एक ख़ास ढंग से पेट की मालिश करती हैं। हथेली और पगतली पर दबाव डालने से भी पेट का मरोड़ ठीक होता है। आंध्र प्रदेश में देहाती औरतें योनि की खुजली, सूजन, पानी जाना जैसी तकलीफों के लिए कम से कम तीस जड़ी-बूटियों के बारे में जानती हैं। पीढ़ियों से दाइयां मुश्किल से मुश्किल जचगी कराती आई हैं। आड़े बच्चे को भी पेट में ही सीधा कर देती हैं। गर्भ रोकने की भी कितनी ही दवाइयां देहाती औरतें इस्तेमाल करती आई हैं।

इन पुराने तरीकों और जड़ी बूटियों की जानकारी पर ध्यान नहीं दिया गया तो यह खत्म हो जाएंगी। आज जब अंग्रेजी दवाइयां बहुत मंहगी हो रही हैं, उनसे होने वाले नुकसानों का भी पता चल रहा है। इन पुराने तरीकों को दोबारा जिंदा करना पड़ेगा। अब ज़रूरत है ऐसी चिकित्सा व्यवस्था की जिसमें सबका मिलाजुला रूप हो। जो आम आदमी को आसानी से मिल सके जिसमें सभी नए पुराने तरीकों के फायदे हों। □